



200 ई.पू. से 300 ई. के मध्य भारतीय नारी की स्थिति

* डॉ. नवीन गिडियन

** डॉ. शम्पा चौबे

शोध पत्र-इतिहास

मौर्योत्तर काल अर्थात् शुंग-सातवाहन एवं कुषाण युग प्राचीन भारत के इतिहास में असाधारण महत्व रखता है। मौर्य साम्राज्य के पतन से गुप्त साम्राज्य के अभ्युत्थान तक की पाँच शताब्दियाँ अपनी कई विशेषताओं के कारण उल्लेखनीय हैं। इस युग की सर्वप्रमुख विशेषता भारत में 'राजनीति एकता का अभाव' थी। मौर्य सम्राटों का शासन समाप्त होते ही यह राजनीतिक एकता छिन्नभिन्न हो गई, अगली आधी सहस्राब्दी में हिमालय से समुद्रपर्यन्त समस्त भूभाग को अपने अधिकार में रखने वाली किसी प्रबल राजनीतिक सत्ता का आविर्भाव नहीं हुआ। गुप्त सम्राटों ने चौथी शताब्दी ई. में भारत के विभिन्न भागों को जीत कर पुनः अपने एकछत्र शासन द्वारा इसे राजनीतिक एकता प्रदान की। इस प्रकार यह युग राजनीतिक विघटन का युग है। इस समय भारत के विविध भागों में विभिन्न शक्तियाँ शासन करती रहीं। उत्तरी भारत में मौर्यों के पतन के बाद शुंग वंश का उत्कर्ष हुआ तथा दक्षिणी भारत में सबसे बड़ी और सुदीर्घकाल तक शासन करने वाली शक्ति सातवाहनवंशी राजा थे।

अतः शुंग-सातवाहन युग को राजनीतिक विघटन (Political Disintegration) के युग का नाम दिया जाता है। इस युग के इतिहास को जानने के प्रमुख साधनों में तत्कालीन अभिलेख तथा प्रमुख ग्रन्थ मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियाँ हैं। प्रस्तुत शोधपत्र मूलतः दोनों स्मृतियों एवं महाभारत में उपलब्ध साक्ष्यों पर आधारित है।

अन्धयुग:-विन्सेन्ट स्मिथ ने "अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया" में कुषाणोत्तर भारत को भारतीय इतिहास का अंधयुग कहा है। उनके शब्दों में "कुषाण तथा आंध्र राजवंशों की समाप्ति से लेकर गुप्त राजवंश के अभ्युदय के बीच का लगभग एक शताब्दी का समय समूचे भारतीय इतिहास का अधिकतम अन्धकारपूर्ण है।" प्रामाणिक सामग्री के अभाव के अतिरिक्त इस युग की दूसरी बड़ी कठिनाई तिथिक्रम विषयक विवाद है। इस युग में विक्रम संवत् और शक संवत् का आरंभ क्रमशः 58 ई. पू. में तथा 78 ई. में हुआ। विद्वानों में सुप्रसिद्ध विक्रम संवत् के संबंध में पिछले 150 वर्षों में मत-मतांतर रहे हैं, किन्तु वे अब तक किसी सर्वसम्मत निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं।

नारी की स्थिति:-इस युग में नारियों की स्थिति में पिछले युगों की अपेक्षा कुछ परिवर्तन आने लगा था। वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी थी, उन्हें पति के साथ समानता की स्थिति प्राप्त थी। इस समय पति-पत्नी एक दूसरे के साथी या मित्र (सखा) थे। उनके स्वत्वों और सामान्य कार्यों में कोई विषमता या भेद नहीं था। उनका सामूहिक नाम 'दंपती' अर्थात् घर का स्वामी था। इससे यह प्रतीत होता है कि

दोनों का घर पर समान रूप से स्वत्व था। मैकडॉनल और कीथ ने लिखा है "यह शब्द (दंपती) ऋग्वेद के समय में स्त्रियों की उच्च स्थिति का बोधक है।" यह स्थिति 600 ई. पू. तक बनी रही।¹ किन्तु वैदिक युग के अंत में स्त्रियों को यज्ञाधिकार से वंचित किया गया। इसके प्रधान कारण संभवतः कर्मकाण्ड की जटिलता एवं पवित्रता में वृद्धि, स्त्रियों का मासिक धर्म, अंतर्जातीय विवाह तथा उपनयन संस्कार के अभाव में स्त्रियों का शूद्र समझा जाना था।² वैदिक युग में पत्नी, पति के साथ बैठकर यज्ञ करती थी, उसके बिना पति का यज्ञ पूरा नहीं हो सकता था। किन्तु 200 ई. पू. में उसका इतना पतन हुआ कि वह शूद्र बना दी गई। इसका एक बड़ा कारण यह प्रतीत होता है कि छठवीं सदी ई.पू. से वैदिक समाज में बाल विवाह का प्रचार होने से स्त्रियों के उपनयन की प्रथा अप्रचलित होने लगी थी।

गृह्य सूत्रों के समय से नियत अवधि तक उपनयन संस्कार न होने से व्यक्ति को शूद्र समझा जाने लगा। स्त्रियों के उपनयन की प्रथा न रहने के कारण उनसे यज्ञ और मंत्रोच्चारण का अधिकार छिनना स्वाभाविक था। मनु (11/37) इसका कारण स्पष्ट करते हुए कहता है कि यज्ञ करने वाला वेद का पारंगत विद्वान तथा यज्ञक्रिया में निष्णात होना चाहिये। उपनयन न होने से स्त्रियाँ वेद की विदुषी नहीं होती थीं, अतः उन्हें यज्ञ करने का अधिकार नहीं दिया गया। मनु ने यह भी कहा है कि पत्नी को मंत्रों के बिना ही यज्ञ में आहूति देनी चाहिए (3/121)। उसकी यह भी व्यवस्था है कि स्त्रियों के सभी संस्कार मंत्रों के बिना किये जाने चाहिये। स्त्रियों की स्थिति हीन होने पर इनके आजीवन संरक्षण का विचार विकसित हुआ। धर्मसूत्रों के समय से प्रायः प्रत्येक शास्त्रकार ने इस बात की घोषणा की है कि स्त्री को कहीं भी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। मनु के कथनानुसार स्त्री की रक्षा बचपन में पिता, यौवन में पति और बुढ़ापे में पुत्र करते हैं, अतः स्त्री स्वतंत्र नहीं है।³ आधुनिक लेखिका रमाबाई ने इस पर कटु व्यंग्य करते हुए लिखा है कि हिन्दू स्त्री केवल एक ही स्थान-नरक-में स्वाधीन रह सकती है। किन्तु स्त्रियों की परतंत्रता का सिद्धांत सर्वमान्य होते हुए भी इस युग में नारियों को कुछ क्षेत्रों में महत्वपूर्ण अधिकार और स्वतंत्रता प्राप्त थी। यद्यपि मनु (8/416, महाभा. 5/33/64) के अनुसार स्त्रियों को संपत्ति रखने का अधिकारी नहीं समझा जाता था, फिर भी मनु ने स्वयमेव स्त्रीधन पर पत्नी को पूर्ण अधिकार दिया है। वह इस बात की व्यवस्था करता है कि राजा को चाहिए कि वह पत्नियों की, साध्वियों की, विधवाओं की, बाँझ और रोगग्रस्त स्त्रियों की संपत्ति की विशेष रूप से रक्षा करे। यदि संबंधी इस संपत्ति को हथियाने का प्रयत्न करें तो

*प्राध्यापक-इतिहास, शासकीय कला-वाणिज्य महाविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश

**प्राध्यापक-इतिहास, शासकीय डी.बी. कन्या महाविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

वह उन्हें चोरों की भांति दंडित करे। भाईयों को अपनी अविवाहित बहिन को संपत्ति में से कुछ हिस्सा बाधित रूप से देना पड़ता था (मनु 9/110)। मनु ने माता को (9/217) और याज्ञवल्क्य (2/135) ने पहली बार पुत्रों के न होने की दशा में पत्नी को पति की संपत्ति का उत्तराधिकारी माना है। इन व्यवस्थाओं से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि नारी को सामान्य रूप से संपत्ति रखने का अधिकार नहीं था, फिर भी कुछ विशेष स्थितियों में स्त्रीधन पर उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त था। इस दृष्टि से इस युग में भारतीय नारी की स्थिति अन्य देशों की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक उन्नत थी।¹ स्त्रियों के सम्पत्ति संबंधी और धार्मिक अधिकार कम होते हुये भी इस युग में स्त्रियों को स्मृतिकारों ने अत्यधिक सम्मान दिया है। महाभारत (5/38/10) एवं मनु (9/26) के अनुसार स्त्रियाँ पूजा के योग्य, महाभाग्यवती और पुण्यशीला हैं, वे घर की शोभा हैं। भीष्म द्वारा इस विषय में पुरुषों को दी गई शिक्षा उल्लेखनीय है जैसे—(1) “स्त्रियाँ मान योग्य हैं, हे मनुष्यो, उनका मान करो। स्त्री से धर्म और रति का कार्य पूरा होता है, तुम्हारी परिचर्या और सेवा उनके अधीन हैं। संतान का उत्पादन, उत्पन्न संतान का परिपालन, और सांसारिक जीवन में प्रीति पत्नी के कारण होती है, अतः इनका सम्मान करना चाहिये। इससे तुम्हारे सब कार्य सिद्ध होंगे (13/46/912) (2) हे राजन्, स्त्रियों का सदा लालन और पूजन करना चाहिये। जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती हैं, वहीं देवता रमण करते हैं। जहाँ इनकी पूजा नहीं होती, वहाँ धार्मिक क्रियायें निष्फल होती हैं (महाभारत 13/46/5-6) एवं (मनु 3/56-57)।

(3) स्त्रियाँ लक्ष्मी हैं (महाभारत 13/46/15), स्त्रियों के निरादर से लक्ष्मी रूठ जाती है अतः ऐश्वर्य की आकांक्षा रखने वालों को स्त्रियों की पूजा उत्तमोत्तम आभूषणों और भोजन से करनी चाहिये। मनुस्मृति (मनु 3/59) के अनुसार जो पति, पिता और भाई बहुत कल्याण चाहते हैं, उन्हें स्त्री को अलंकारों से भूषित करना चाहिये (मनु 3/55)। मनुस्मृति में यह भी कहा गया है कि स्त्री इस प्रकार भूषित, पूजित और सम्मानित होने पर शोभायमान होती है, उसके ऐसा होने पर सारा कुल चमक उठता है। यदि वह इस प्रकार शोभायमान नहीं होती तो कुल भी नहीं चमकता है (मनु 3/55-62)। इन सब वचनों से यह स्पष्ट है कि इस काल में स्त्रियों को समाज में ऊँचा समझा जाता था। मनु (3/55-62) तथा याज्ञ (1/82) ने इस बात पर अत्यधिक बल दिया है कि स्त्रियों को परिवार में पूरी प्रतिष्ठा और सम्मान दिया जाना चाहिये। इस काल में स्त्रियों की सम्मानित स्थिति शास्त्रकारों की अनेक व्यवस्थाओं से भी स्पष्ट होती है। पुरानी व्यवस्था का अनुसरण करते हुये मनु (21138) तथा याज्ञ (1/117) ने स्त्रियों को राजा और ज्ञानी के साथ सड़क पर भीड़ होने की दशा में अन्य व्यक्तियों से पहले मार्ग देने का अधिकार दिया है। नवविवाहित और गर्भवती स्त्रियों को अतिथियों से भी पहले भोजन कराने की व्यवस्था मनु (3/114-16) और याज्ञ (1/117) करते हैं। मनु, पत्नी की हत्या को ब्रह्महत्या के समान महापाप मानता है (11/88)। साथ ही व्यभिचारिणी पत्नी के साथ भी उदारता का व्यवहार करने की सलाह देता है। कुलटा होने पर उसके लिए अन्य समाजों की अपेक्षा कम कड़े दंड विधान की व्यवस्था की है।² स्त्रियों को महाभारत ने न केवल अवध्य बताया है, अपितु यह भी कहा है कि इनको किसी प्रकार का दुर्वचन नहीं कहना चाहिये और उन्हें कोई

क्लेश नहीं देना चाहिये।³ महाभारत में स्त्री संबंधियों में माता को जितनी महत्ता प्रदान की गई है उतनी शायद ही किसी अन्य ग्रंथ में दी गई हो (12/108/16-18, 13/105/116,1/196/16)। पत्नी के रूप में महाभारत में द्रौपदी, दमयंती और सावित्री का जिस रूप में चित्रण हुआ है, उससे यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। इस बात की पुष्टि इस युग के ऐतिहासिक अभिलेखों से भी होती है। सातवाहन राजवंश में नागनिका और बालश्री ने अपने नाबालिग पुत्रों की अभिभाविका के रूप में बड़ी योग्यतापूर्वक शासन के सब कार्यों का संचालन किया था। इस समय के अभिलेखों में हमें स्त्रियों द्वारा धार्मिक कार्यों के लिये अनेक दान देने के उल्लेख भी मिलते हैं।

पत्नी की स्थिति:—मनु (5/150) तथा याज्ञवल्क्य (1/83-87) ने पत्नी के कार्यों का विशद प्रतिपादन किया है। मनु के कथनानुसार पत्नी में चार बातें होनी चाहिये—वह सदैव हंसमुख रहे, गृहकार्यों में दक्ष हो, घर की सब वस्तुएँ साफ रखे और अपव्ययी न हो।

याज्ञवल्क्य ने इनके अतिरिक्त पति का प्रिय कार्य करना, सास-ससुर की चरण वंदना, उत्तम आचरण और संयम पत्नी के प्रधान गुण बताये हैं। महाभारत (3/233) में द्रौपदी द्वारा सत्यभामा को तथा 13/123 में शांडिल्य द्वारा सुमना को पत्नी के धर्मों का विस्तार से उपदेश दिया गया है। कामसूत्र (4/1/32) के मत में पत्नी को वार्षिक आय के अनुसार व्यय करना चाहिये। द्रौपदी ने महाभारत में कहा है कि उसे पाण्डवों को पूरी संपत्ति के आय-व्यय का ज्ञान है। इस काल के शास्त्रकार, स्त्री का प्रधान कर्तव्य पति-सेवा और पातिव्रत्य धर्म का पालन करना बताते हैं। मनु ने इस पर बल देते हुये यह कहा है कि पत्नी, दुखदायक, स्वच्छंदगामी और गुणशून्य पति की भी देवता की तरह सेवा करे, इसी से स्त्रियाँ स्वर्ग में पूजित होती हैं, क्योंकि स्त्रियों के लिये पृथक् से कोई यज्ञ, व्रत या उपवास नहीं है (5/154-55)। याज्ञवल्क्य की दृष्टि में पत्नी का परम धर्म यही है कि वह पति के वचन का पालन करे। महाभारत में पाण्डु ने कहा है कि वेदाज्ञा यह है कि पति, पत्नी को धर्मानुकूल या धर्मविरुद्ध जो बात कहे उसके अनुसार उसे कार्य करना चाहिये (1/122/27-28)। इस युग के शास्त्रकारों ने पतिव्रत्य की गरिमा और सतीत्व की महिमा के बहुत गीत गाये हैं। मनुस्मृति (5/165-66), याज्ञवल्क्य स्मृति (1/87) और महाभारत (15/20/4) इसे सबसे ऊँचे स्वर्गलोक में पहुँचाने वाला मानते हैं, जिसे केवल ब्रह्मा, पवित्र ऋषि, पूज्य आत्मा और ब्राह्मण ही प्राप्त करते हैं (महा. 13/73/2,9/5/41-47)। पतिव्रत्य की महिमा का वर्णन करते हुये स्मृतिकारों ने अनेक चमत्कारपूर्ण बातें भी कही हैं। सावित्री ने इसी के प्रभाव से अपने पति सत्यवान् को यमराज के चंगुल से बचाया था (महाभारत 3/296)। सीता ने इसी कारण हनुमान की पूँछ में आग लगाने पर भी जलने से उसकी रक्षा की थी। सतियों के तेज के सम्मुख तपस्वी ब्राह्मणों की शाप देने की शक्ति को भी नतमस्तक होना पड़ता था। (महा. 3/206)। सतीत्व का उपर्युक्त आदर्श इस युग से हिन्दू समाज में प्रबल होने लगा था। मनु ने यद्यपि स्त्री-पुरुष का यह परम धर्म बताया है कि वे मृत्युपर्यंत एक दूसरे के प्रति सच्चे बने रहें (9/101), किन्तु अन्यत्र उसने पत्नी के मरने पर पुरुष को पुनर्विवाह का प्रावधान किया है (5/157-61)। याज्ञवल्क्य (1/89) भी पति को पत्नी के मरने पर अविलंब दूसरे विवाह का आदेश देता है। मनु और याज्ञवल्क्य द्वारा

विधुओं को यह अधिकार यज्ञ कार्य करने की दृष्टि से दिया गया प्रतीत होता है, क्योंकि पत्नी यज्ञ के लिये आवश्यक थी और पति को प्रतिदिन यज्ञ करना पड़ता था, किन्तु इसके साथ ही मनु ने यह भी व्यवस्था की थी कि पति, पत्नी को अप्रियवादिनी होने पर तुरन्त छोड़ सकता था (मनु 9/81, या. 1/63), किन्तु पत्नी—पति को कभी नहीं छोड़ सकती थी। वही स्त्री आदर्श सती थी, जो पति के दोषों की परवाह न करती हुई जीवन पर्यन्त उसकी आराधना करे। इस प्रकार का सतीत्व स्त्री पुरुष के लिये नैतिकता का दोहरा मानदंड स्थापित करता है। स्त्रियों के आदर्शों में पतिव्रत की अपेक्षा रखी जाती थी, किन्तु पुरुषों के लिये एक पत्नीव्रत होना आवश्यक नहीं था, सतीत्व का यह एकांगी आदर्श इस युग में हिन्दू समाज में लोकप्रिय हुआ।⁹

विधवा की स्थिति:—इस काल के शास्त्रकारों ने विधवा के पुनर्विवाह का विरोध किया है। मनु (4/1162) के मतानुसार “सदाचारिणी नारियों के लिये दूसरे पति का विधान कहीं नहीं किया गया है।” इसी बात को उन्होंने बार—बार कई प्रकार से कहा है। 9/65 के अनुसार विवाह की विधि में विधवा के पुनर्विवाह का कहीं वर्णन नहीं है, कन्या एक बार ही दी जाती है (9/47)। पाणिग्रहण के मंत्र कन्याओं के लिये ही हैं। इसके अतिरिक्त मनु ने विधवा का सर्वोत्तम धर्म ब्रह्मचारिणी रहते हुये संयमपूर्वक जीवन बिताना माना है (मनु 5/156—61, एवं याज्ञ 1/75)। फिर भी उस समय विधवाओं के पुनर्विवाह का निषेध समाज में सर्वमान्य नहीं हुआ था। कुछ स्थितियों में विधवाओं के पुनर्विवाह हुआ करते थे। ऐसी स्त्री को पुनर्भू कहते थे। मनु (9/175,184) तथा याज्ञवल्क्य (2/130/—132) पुरानी व्यवस्था के अनुसार पुनर्विवाह करने वाली स्त्री (पुनर्भू) के पुत्रों का सांपत्तिक अधिकार कुछ विशेष परिस्थितियों में स्वीकार करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मनु द्वारा विधवा के पुनर्विवाह का निषेध करने पर भी इस काल में समाज में यह परिपाटी प्रचलित थी। मनु ने पुरानी परंपरा का अनुसरण करते हुए अक्षतयोनि विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार प्रदान किया है। पति के विदेश जाने और लापता होने की दशा में पत्नी के पुनर्विवाह के अधिकार के संबंध में मनु की व्यवस्था स्पष्ट नहीं है। मनु के अनुसार यदि पुरुष धार्मिक कर्तव्य की दृष्टि से विदेश गया हो तो पत्नी को आठ वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिये, यदि ज्ञान या यश की प्राप्ति के लिये गया है तो 6 वर्ष तक, यदि प्रेम में वशीभूत होकर गया हो तो 1 वर्ष तक पति बाट जोहनी चाहिए (9/76)। किन्तु मनु ने यह नहीं बताया कि उपर्युक्त अवधियों की समाप्ति पर भी पति के घर वापिस न लौटाने की दशा में पत्नी को क्या करना चाहिये। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए नारद (स्त्री पुं 98—101) ने यह व्यवस्था की है कि यदि पति विदेश गया हो तो ब्राह्मण पत्नी को आठ वर्ष तक और यदि संतान न हुई हो तो चार वर्ष तक ही प्रतीक्षा करनी चाहिये। उसके बाद वह दूसरा विवाह कर सकती है। नारद की व्यवस्था मनु की अपेक्षा स्त्रियों के पुनर्विवाह के विषय में अधिक स्पष्ट है। उसके मतानुसार पाँच प्रकार की विपत्तियों में स्त्री दूसरा पति कर सकती है—जब पति लापता हो जाये, मर जाये, संन्यासी हो जाये, नपुंसक हो या जाति से पतित हो।¹⁰ किन्तु शनैः शनैः इस विषय में नारद की अपेक्षा मनु की स्त्रियों के लिये बनायी गई जीवन बिताने की व्यवस्था सर्वमान्य होने लगी। इस कारण समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ने लगी। याज्ञवल्क्य

पहला स्मृतिकार है जिसने स्पष्ट रूप से सर्वप्रथम विधवाओं को पुत्रों के अभाव में पति की संपत्ति का स्वामी बनाया है (1/135—36)।¹⁰

सतीप्रथा:—इस युग में सती प्रथा व्यापक रूप से समाज में प्रचलित नहीं हुई थी। महाभारत में इसका सुप्रसिद्ध उदाहरण पाण्डु के साथ माद्री का सती होना है (1/95/65,1125/29)। मौसलपर्व (7/18) में वसुदेव की चार पत्नियों के सती होने का उल्लेख है। रामायण में भी इस प्रथा के कुछ उल्लेख मिलते हैं। (5/26/24,6/15/27)। किन्तु ये सभी उदाहरण क्षत्रिय कुलों की स्त्रियों के हैं। श्री काणे के मतानुसार सती प्रथा आरंभ में राजकुलों एवं भद्र लोगों तक ही सीमित थी, क्योंकि प्राचीनकाल में युद्ध में हारने वाले राजाओं एवं क्षत्रियों की पत्नियों की स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती थी। विजेता पराजित लोगों की पत्नियों से बदला चुकाते थे, उन्हें बंदी बना कर ले जाते थे तथा उनके साथ दासियों जैसा व्यवहार करते थे। मनु (7/96) ने सैनिकों को युद्ध में प्राप्त अन्य वस्तुओं के साथ स्त्रियों को भी पकड़ लेने की आज्ञा दी है। अतः इस प्रथा का आरंभ क्षत्रिय कुलों से ही प्रतीत होता है।¹¹ पति के बाद जीवित रहने वाली पत्नी की स्थिति परिवार में अत्यंत असहाय, दयनीय और कष्टपूर्ण होती थी। महाभारत (1/158/12,12/148/2) में इसका बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया है। संगम साहित्य से भी दक्षिण भारत के संबंध में वही स्थिति प्रतीत होती है। यहाँ विधवाएं कठोर संयम का जीवन बिताती थीं और विधवा का सती होना एक अतीत स्मरणीय और उच्च आदर्श समझा जाता था।¹²

पर्दाप्रथा:—इस समय रानियाँ और राजकन्यायें अंतः पुरों में इस प्रकार रहा करती थीं कि सामान्य जनता उन्हें न देख सके। रामायण (2/33/8) और महाभारत (2/69/6,9/71) में इनके बड़े काव्यमय वर्णन मिलते हैं। इनमें कहा गया है कि ये स्त्रियाँ असूर्यम्पश्या थीं अर्थात् सूर्य भी इनके दर्शन नहीं कर पाता था, आकाश में उड़ने वाले पक्षी इन्हें नहीं देख पाते थे, वायु भी इनका स्पर्श नहीं कर सकती थी। जब रानियाँ राजदरबार में आती थीं तो भी वे पर्दे में ही रहती थीं। जैन कल्पसूत्र (4/62—3) में उल्लिखित है कि सिद्धार्थ ने जब रानी के स्वप्न का फल पूछने के लिये मंत्रियों और दरबारियों को बुलाया तो रानी इसे सुनने के लिये पर्दे के पीछे बैठी। ललितविस्तार (157) के अनुसार नवविवाहिता वधू, सास, ससुर और बड़े बूढ़े लोगों की उपस्थिति में पर्दा किया करती थी।

गणिका:—बौद्ध साहित्य से यह प्रतीत होता है कि उस समय कुछ गणराज्यों में सुंदर स्त्रियों को अविवाहित रहना पड़ता था, क्योंकि उनको पत्नी के रूप में प्राप्त करने के लिये उस गणराज्य के युवकों में उग्र संघर्ष होने की संभावना बनी रहती थी। बुद्ध के प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक की माता ऐसी ही एक गणिका थी। गण अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा उपभोग्य होने के कारण इन्हें गणिका का नाम दिया जाता था। आम्रपाली के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि उन दिनों गणिकायें नृत्य आदि की विभिन्न कलाओं में प्रवीण होती थीं और समाज में उनका एक विशिष्ट स्थान था। किन्तु शुंग—सातवाहन युग में मनु ने इसकी उग्र निंदा की है (9/259—62)। मनु (4/209, 219) तथा याज्ञवल्क्य (1/161) ने गणिकाओं को उन व्यक्तियों में गिना है जिनके यहाँ भोजन करने का निषेध है। वात्स्यायन के कामसूत्र के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि उन दिनों गणिकाओं की स्थिति समाज में काफी अच्छी समझी जाती

थी। किन्तु यह स्थिति उसी स्त्री को प्रदान की जाती थी जिसमें रूप के साथ-साथ बौद्धिक गुण हों तथा जो शास्त्र में कुशल होने के साथ-साथ नाना प्रकार की कलाओं में भी प्रवीण हो। ऐसी वेश्या को गणिका कहा जाता था। यह राजाओं से और गुणवान् व्यक्तियों से पूजित होती थी। वात्स्यायन के कथनानुसार उसका 64 कलाओं में पारंगत होना और शीलगुण संपन्न होना आवश्यक था।¹³ ललितविस्तार में राजा शुद्धोदन ने यह इच्छा प्रकट की है कि सिद्धार्थ की बहु शास्त्रों में और कलाओं में गणिका के समान कुशल हो। गणिकायें बड़ी विदुषी और नाटक में संस्कृत भाषा बोलने वाली होती थीं।

विवाह के नियम:—इस काल में मनु (3/27/-34) और याज्ञवल्क्य (1/58-61) ने ब्रह्म, आर्य, प्रजापत्य, दैव, गंधर्व, असुर, राक्षस और पैशाच नामक आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है। इनमें से पहले चार प्रकार के विवाहों को प्रशस्त माना गया और अंत के चार प्रकारों की निंदा की गई है (मनु 3/36-42, या 1/39-41)। पहले चार प्रकार विवाहों में सूक्ष्म अंतर थे। किन्तु इनका सामान्य तत्व यह था कि इनमें कन्या का पिता या अन्य कोई अभिभावक विवाह में कन्या का दान किया करता था, जबकि अंतिम चार प्रकारों में कन्यादान नहीं होता था। विवाह के लिए कुछ नियमों का ध्यान रखा जाता था। (मनु 3/5) तथा याज्ञवल्क्य (1/53) के अनुसार वर-वधु असपिण्ड और असगोत्र होने चाहिये। असपिण्डता का तात्पर्य पितृपक्ष और मातृपक्ष से निकट का संबंध न होना था। पिता की ओर से सातवीं और माता की ओर से पाँचवीं पीढ़ी तक के संबंधियों में विवाह वर्जित था। मनु ने बुआ, मौसी और मामा की लड़की से विवाह की घोर निंदा की है (11/172-73)। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय ऐसे विवाह हुआ करते थे। बौधायन (1/1/2-3) ने मातुलकन्या परिणय को दक्षिण भारत की विशेष परिपाटी बताया था और महाभारत में मामा की लड़की के साथ विवाह के उदाहरण अर्जुन और सुभद्रा, प्रद्युम्न और रुक्मी की कन्या

का तथा अनिरुद्ध और रोचना का विवाह हैं।¹⁴ असगोत्रता का आशय वर-वधु का समान गोत्र का न होना था। इसी प्रकार का तीसरा नियम सवर्णता अर्थात् वर-वधु का एक ही वर्ण का होना था। इसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने ही वर्णों में विवाह करना उचित समझते थे। किन्तु इस समय तक सवर्ण विवाह ने विवाहों के नियम के कठोर रूप को धारण नहीं किया था, इसमें बड़ा लचकीलापन था। सवर्ण विवाह के नियम को तोड़कर उस समय समाज में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह होते थे। अनुलोम या उच्च वर्ण के पुरुष के साथ निम्नवर्ण की स्त्री का तथा प्रतिलोम अर्थात् निम्न वर्ण के पुरुष का उच्च वर्ण की पत्नी के साथ विवाह प्रचलित था। अनुलोम विवाह में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने से निम्न वर्णों की स्त्रियों के साथ विवाह कर सकते थे। विवाह की आयु के विषय में भी इस समय पर्याप्त वैविध्य था। सामान्य रूप से स्त्रियों के लिए छोटी आयु में विवाह उत्तम समझा जाने लगा था (मनु 9/88)। मनु अपने वर्ण का उत्तम वर मिलने दश में रजोदर्शन से पूर्व ही कन्या के विवाह का परामर्श देता है। याज्ञवल्क्य इससे भी आगे बढ़कर यह कहता है (1165) कि रजोदर्शन के बाद कन्या जितने समय तक अविवाहित रहती है, उतने समय तक उसके अभिभावक को भ्रूणहत्या का पाप लगता है। पुरुषों के विवाह की आयु सामान्य रूप से उपनयन संस्कार के 12 वर्ष बाद अर्थात् विद्याध्ययन समाप्ति पर ही उपर्युक्त समझी जाती थी। इस कारण इस समय स्त्रियों और पुरुषों की विवाह की आयु में बहुत बड़ा अंतर होता था। मनु के मतानुसार (9/94) 30 वर्ष के लड़के को 12 वर्ष की लड़की से तथा 24 वर्ष के लड़के को 8 वर्ष की लड़की से विवाह करना चाहिये। किन्तु वात्स्यायन (3/1-2) ने यह सलाह दी है कि वर को अपने से 3 वर्ष या इससे कुछ अधिक छोटी कन्या से विवाह करना चाहिये। इन दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं से यह सूचित होता है कि उस समय बाल-विवाह के साथ-साथ परिपक्व आयु में भी विवाह की परिपाटी प्रचलित थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रिमथ, वी.ए. : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, चतुर्थ संस्करण, 1962, पृ. 292
2. वेदालंकार, हरिदत्त : हिन्दु परिवार मीमांसा, द्वितीय संस्करण, 1963, पृ. 74
3. उपरोक्त : पृ. 109 - 113
4. स्मृतियाँ : मनु : 9/146, याज्ञवल्क्य : 1/85, गौतम सूत्र : 18/1, वसिष्ठ : 5/1-3
5. हेनरी, मेन : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ. 321 - 324
6. वेदालंकार, हरिदत्त : हिन्दु परिवार मीमांसा, द्वितीय संस्करण, 1963, पृ. 141-143
7. महाभारत : कुंभघोणम संस्करण 13/59/9
8. वेदालंकार, हरिदत्त : हिन्दु परिवार मीमांसा, द्वितीय संस्करण, 1963, पृ. 133-140
9. यह श्लोक पाराशर स्मृति (4/30) और अग्निपुराण (154/5 एवं 6) में भी मिलते हैं।
10. वेदालंकार, हरिदत्त : हिन्दु परिवार मीमांसा, द्वितीय संस्करण, 1963, पृ. 476
11. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास—खण्ड 1 पृ. 375
12. वेदालंकार, हरिदत्त : हिन्दु परिवार मीमांसा, द्वितीय संस्करण, 1963, पृ. 326-352
13. वात्स्यायन : कामसूत्र, बनारस, 1912
14. वेदालंकार, हरिदत्त : हिन्दु परिवार मीमांसा, द्वितीय संस्करण, 1963, अध्याय-3